[2022] 13 एस.सी.आर. 34

गुलाम नबी बेग

बनाम

मोहम्मद मक़बूल मगरे एवं अन्य

(आपराधिक याचिका संख्या 1041/2022)

(26 जुलाई 2022)

[ए. एम खानविलकर, अभय एस. ओका एवं जे. बी. पादरीवाला, न्यायाधीश]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 : धारा 226, 227 एवं 228 - भारतीय दंड संहिता, 1860 : धारा 147, 302, 323, 354 एवं 451 - अभियुक्त व्यक्तियों ने एक अवैध जमावड़ा बनाकर अपीलकर्ता तथा उसके परिवार के सदस्यों पर हमला किया और हमले के दौरान अपीलकर्ता की पत्नी अभियुक्तों द्वारा पहुँचाई गई चोटों के कारण मृत्यु को प्राप्त हुई - मृतका की मृत्यु का कारण पोस्टमार्टम रिपोर्ट में "कार्डियो रेस्पिरेटरी फेल्योर" बताया गया - अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध हत्या के अपराध सहित अन्य अपराधों के लिए आरोप पत्र दायर किया गया - विचारण न्यायालय ने अभियुक्त व्यक्तियों को हत्या के अपराध से आरोपमुक्त कर दिया तथा आईपीसी की धारा 304 के अंतर्गत दंडनीय आपराधिक मानव वध के अपराध हेतु आरोप निर्धारित किया - उच्च न्यायालय ने अभियुक्त व्यक्तियों को हत्या के अपराध से आरोपमुक्त करने संबंधी विचारण न्यायालय के आदेश की पुष्टि की - अपील पर अभिनिर्धारित : आरोप निर्धारित करने के समय विचारण न्यायालय पर यह दायित्व होता है कि वह अपने विवेक का प्रयोग करे और मात्र डाकघर की भांति कार्य न करे - आरोप निर्धारित करने के समय न्यायालय द्वारा जिस सामग्री का मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है, वह वही सामग्री होनी चाहिए जो अभियोजन द्वारा प्रस्तुत एवं उस पर निर्भर की गई हो - इस स्तर पर केवल इतना आवश्यक है कि न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो कि अभियोजन द्वारा एकत्रित साक्ष्य यह अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त है कि अभियुक्त ने अपराध किया है - मामला आईपीसी की धारा 302 अथवा धारा 304 भाग II के अंतर्गत आता है या नहीं, इसका निर्णय केवल तब किया जा सकता है जब

अभियोजन तथा, यदि कोई हो, तो बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत संपूर्ण मौखिक साक्ष्य का मूल्यांकन अभिलेख पर आ जाए - आरोप निर्धारित करने के चरण में विचारण न्यायालय केवल अभिलेख पर उपलब्ध पोस्टमार्टम रिपोर्ट पर निर्भर होकर ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाल सकता था।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 : पोस्टमार्टम रिपोर्ट का साक्ष्यात्मक मूल्य - पोस्टमार्टम रिपोर्ट अपने आप में ठोस साक्ष्य नहीं होती - डॉक्टर की पोस्टमार्टम रिपोर्ट मृत शरीर के परीक्षण के आधार पर दिया गया उसका पूर्व कथन होती है - न्यायालय में डॉक्टर का कथन ही एकमात्र ठोस साक्ष्य होता है - पोस्टमार्टम रिपोर्ट का उपयोग केवल धारा 157 के अंतर्गत उसके कथन की पुष्टि करने, अथवा धारा 159 के अंतर्गत उसकी स्मृति को ताज़ा करने, अथवा साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 145 के अंतर्गत साक्षी मंच पर दिए गए उसके कथन का खंडन करने के लिए किया जा सकता है।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 : धारा 45 - विशेषज्ञ राय - विशेषज्ञ साक्षी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह न्यायालय के समक्ष समस्त सामग्री, जिसमें वह आँकड़े भी सम्मिलित हों जिनके आधार पर उसने अपना निष्कर्ष निकाला है, प्रस्तुत करे तथा विज्ञान से संबंधित शब्दों की व्याख्या करते हुए मामले के तकनीकी पक्ष पर न्यायालय को अवगत कराए, ताकि न्यायालय, यद्यपि विशेषज्ञ नहीं है, फिर भी विशेषज्ञ की राय को समुचित महत्व देते हुए उन सामग्रियों के आधार पर अपना स्वतंत्र निर्णय बना सके, क्योंकि एक बार विशेषज्ञ की राय स्वीकार कर ली जाती है, तो वह चिकित्सा अधिकारी की राय न रहकर न्यायालय की राय बन जाती है।

अपील स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: 1. **विचारण न्यायालय पर आरोप निर्धारित करते समय अपने विवेक का प्रयोग करने का दायित्व होता है और उसे मात्र डाकघर की भांति कार्य नहीं करना चाहिए। पुलिस द्वारा प्रस्तुत आरोप पत्र पर बिना अपने विवेक का प्रयोग किए तथा अपने मत के समर्थन में संक्षिप्त कारण अभिलिखित किए बिना यथावत अनुमोदन करना विधि द्वारा स्वीकार्य नहीं है। तथापि, आरोप निर्धारित करने के समय न्यायालय द्वारा जिस सामग्री का मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है, वह वही सामग्री होनी चाहिए जो अभियोजन द्वारा प्रस्तुत एवं उस पर निर्भर की गई हो। ऐसी सामग्री का परीक्षण इतना सूक्ष्म नहीं होना चाहिए कि वह**

अभ्यास एक लघु विचारण में परिवर्तित हो जाए जिससे अभियुक्त के दोषी होने या न होने का निर्धारण किया जा सके। इस चरण पर केवल इतना आवश्यक है कि न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो कि अभियोजन द्वारा एकत्रित साक्ष्य यह अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त है कि अभियुक्त ने अपराध किया है। यहां तक कि प्रबल संदेह भी पर्याप्त होगा। निस्संदेह, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अंतर्गत अंतिम रिपोर्ट के रूप में अभियोजन द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री के अतिरिक्त, न्यायालय किसी अन्य ऐसे साक्ष्य या सामग्री पर भी निर्भर कर सकता है जो उच्च कोटि की हो तथा अभियोजन द्वारा आरोपित आरोप से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित हो। [पैरा 27][52-एफ-एच;53-ए]

2. वर्तमान मामले में यह कहा जा सकता है कि विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का संकलन करते हुए एक प्रकार से लघु विचारण कर लिया। विचारण न्यायालय ने अभियुक्त व्यक्तियों को हत्या के अपराध से आरोपमुक्त करना उचित समझा तथा केवल अभिलेख पर उपलब्ध चिकित्सीय साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अंतर्गत आपराधिक मानव वध के अपराध हेतु आरोप निर्धारित किया। विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय दोनों ही इस तथ्य से प्रभावित हुए कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट में मृतका की मृत्यु का कारण "कार्डियो रेस्पिरेटरी फेल्योर" बताया गया है, इसलिए इसे मृतका पर किए गए कथित हमले से संबंधित नहीं माना जा सकता। विचारण न्यायालय का ऐसा दृष्टिकोण सही नहीं है और विधि में स्वीकार्य नहीं है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट अपने आप में ठोस साक्ष्य नहीं होती। "कार्डियो रेस्पिरेटरी फेल्योर" का संबंधित घटना से कोई संबंध था या नहीं, इसका निर्धारण प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के मौखिक साक्ष्य तथा संबंधित चिकित्सा अधिकारी, अर्थात विशेषज्ञ साक्षी, जिसे अभियोजन अपने साक्षियों में से एक के रूप में प्रस्तुत कर सकता है, के साक्ष्य के आधार पर किया जाना आवश्यक होगा। डॉक्टर की पोस्टमार्टम रिपोर्ट मृत शरीर के परीक्षण के आधार पर दिया गया उसका पूर्व कथन होती है। यह ठोस साक्ष्य नहीं होती। न्यायालय में डॉक्टर का कथन ही एकमात्र ठोस साक्ष्य होता है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट का उपयोग केवल धारा 157 के अंतर्गत उसके कथन की पुष्टि करने, अथवा धारा 159 के अंतर्गत उसकी स्मृति को ताज़ा करने, अथवा साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 145 के अंतर्गत साक्षी मंच पर दिए गए उसके कथन का खंडन करने के लिए किया जा सकता है। न्यायालय की सहायता के लिए विशेषज्ञ के रूप में बुलाया गया चिकित्सा साक्षी तथ्य का साक्षी नहीं होता और चिकित्सा अधिकारी द्वारा दिया

गया साक्ष्य वास्तव में परीक्षण के दौरान पाए गए लक्षणों के आधार पर दिया गया परामर्शात्मक स्वरूप का होता है। विशेषज्ञ साक्षी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह न्यायालय के समक्ष समस्त सामग्री, जिसमें वे आँकड़े भी सम्मिलित हों जिनके आधार पर उसने निष्कर्ष निकाला है, प्रस्तुत करे तथा विज्ञान से संबंधित शब्दों की व्याख्या करते हुए मामले के तकनीकी पक्ष पर न्यायालय को अवगत कराए, ताकि न्यायालय, यद्यपि विशेषज्ञ नहीं है, फिर भी विशेषज्ञ की राय को समुचित महत्व देते हुए उन सामग्रियों के आधार पर अपना स्वतंत्र निर्णय बना सके, क्योंकि एक बार विशेषज्ञ की राय स्वीकार कर ली जाती है, तो वह चिकित्सा अधिकारी की राय न रहकर न्यायालय की राय बन जाती है। [पैरा 29] [53-एफ-एच; 54-ए-डी]

3. अभियोजन को यह अवसर दिया जाना चाहिए था कि वह संबंधित चिकित्सा अधिकारी के माध्यम से मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत कर पोस्टमार्टम रिपोर्ट सहित सभी प्रासंगिक तथ्यों को सिद्ध करे और इस प्रकार विशेषज्ञ की राय प्राप्त करे। विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकालना अत्यंत शीघ्रता थी कि चूंकि पोस्टमार्टम रिपोर्ट में कोई गंभीर चोटें अंकित नहीं हैं, इसलिए "कार्डियो रेस्पिरेटरी फेल्योर" के कारण हुई मृतका की मृत्यु का संबंधित घटना से कोई संबंध नहीं माना जा सकता। मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत आता है या धारा 304 भाग II के अंतर्गत, इसका निर्णय विचारण न्यायालय केवल तभी कर सकता था जब अभियोजन तथा, यदि कोई हो, तो बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत समस्त मौखिक साक्ष्य अभिलेख पर आ जाए और उसका मूल्यांकन कर लिया जाए। अंततः, विचारण के समापन पर अभिलेख पर उपलब्ध समस्त साक्ष्यों के समुचित मूल्यांकन के पश्चात विचारण न्यायालय यह निर्णय ले सकता है कि यह हत्या का मामला है अथवा आपराधिक मानव वध का मामला है। [पैरा 30, 31][54-इ-जी]

4. यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि किसी आपराधिक विचारण में अभियोजन केवल वही साक्ष्य प्रस्तुत कर सकता है जो विचारण न्यायालय द्वारा निर्धारित आरोप के अनुरूप हो। जहां उच्चतर आरोप निर्धारित नहीं किया गया है, जबकि उसके समर्थन में साक्ष्य उपलब्ध है, वहां अभियुक्त यह मानने का अधिकारी होता है कि उसे केवल उस कम गंभीर अपराध के संबंध में अपना बचाव प्रस्तुत करना है जिसके लिए उस पर आरोप लगाया गया है। ऐसी स्थिति में उसके लिए उन अपराधों से संबंधित साक्ष्यों का सामना करना आवश्यक नहीं होता जिनके लिए उस पर आरोप नहीं लगाया गया है। उसे केवल निर्धारित आरोप का उत्तर देना होता है। संहिता उससे यह अपेक्षा नहीं करती कि वह अभियोजन

द्वारा प्रस्तुत सभी साक्ष्यों का सामना करे। उसे केवल उस साक्ष्य का खंडन करना होता है जो आरोप से संबंधित हो। अभियोजन का मामला आवश्यक रूप से आरोप द्वारा सीमित होता है। आरोप ही विचारण का आधार बनता है और उसी से विचारण प्रारंभ होता है, तथा अभियुक्त विधिसम्मत रूप से अपने विरुद्ध लगाए गए आरोप के विषय पर ही ध्यान केंद्रित कर सकता है। उसे उन अपराधों के संबंध में साक्षियों से जिरह करने की आवश्यकता नहीं होती जिनके लिए उस पर आरोप नहीं लगाया गया है और न ही उसे ऐसे आरोपों के संबंध में बचाव साक्ष्य प्रस्तुत करना आवश्यक होता है। एक बार जब विचारण न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत दंडनीय अपराध से अभियुक्त व्यक्ति को आरोपमुक्त करने का निर्णय ले लेता है और उसके पश्चात भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग II के अंतर्गत दंडनीय कम गंभीर अपराध के लिए आरोप निर्धारित करता है, तो उसके बाद अभियोजन निर्धारित आरोप से परे जाकर कोई साक्ष्य प्रस्तुत करने की स्थिति में नहीं रहता। [पैरा 32, 33] [55 -बी-इ]

भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल एवं अन्य **(1979) 3 एससीसी 4: [1979] 2 एससीआर 229**; *दीपकभाई जगदीशचंद्र पटेल बनाम गुजरात राज्य* **(2019) 16 एससीसी 547: [2019] 6 एससीआर 701**; *सज्जन कुमार बनाम सीबीआई* **(2010) 9 एससीसी 368: [2010] 11 एससीआर 669**; *कर्नाटक राज्य बनाम एम. आर. हिरेमठ* **(2019) 7 एससीसी 515: [2019] 8 एससीआर 713** - पर निर्भर किया गया।

वी. सी. शुक्ला बनाम राज्य, सी.बी.आई. के माध्यम से **(1980) सप्लीमेंट एससीसी 92: [1980] 2 एससीआर 380; 1980 एससीसी (क्रि) 695**; *राज्य बनाम एस. सेल्वी* **(2018) 13 एससीसी 455**; *विक्रम जोहर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य* **(2019) 14 एससीसी 207: [2019] 8 एससीआर 1**; *आसिम शरीफ बनाम राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण* **(2019) 7 एससीसी 148: [2019] 8 एससीआर 799**; *भावना बाई बनाम घनश्याम* **(2020) 2 एससीसी 217: [2019] 14 एससीआर 422**; *अमित कपूर बनाम रमेश चंदर* **(2012) 9 एससीसी 460**; *महाराष्ट्र राज्य बनाम सोम नाथ थापा एवं अन्य* **(1996) 4 एससीसी 659** - का उल्लेख किया गया।

उद्धृत निर्णयजन्य विधि

[1980] 2 एससीआर 380 - पैरा 18 में उद्धृत।

[1979] 2 एससीआर 229 - पैरा 21 पर निर्भर।

[2019] 6 एससीआर 701 - पैरा 22 पर निर्भर।

[2010] 11 एससीआर 669 - पैरा 23 पर निर्भर।

(2018) 13 एससीसी 455 - पैरा 24 में उद्धृत।

[2019] 8 एससीआर 1 - पैरा 24 में उद्धृत।

[2019] 8 एससीआर 799 - पैरा 25 में उद्धृत।

[2019] 8 एससीआर 713 - पैरा 26 पर निर्भर।

[2019] 14 एससीआर 422 - पैरा 27 में उद्धृत।

[2012] 7 एससीआर 988 - पैरा 28 में उद्धृत।

[1996] 1 परिशिष्ट एससीआर 189 - पैरा 28 में उद्धृत।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 1041/2022

जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय,श्रीनगर द्वारा सीएम (एम) संख्या 99/2020 में पारित दिनांक 26.11.2020 के निर्णय एवं आदेश से।

रमेश कुमार मिश्रा, संदीप पांडेय, अपीलकर्ता के लिए अधिवक्ता।

सुश्री तरुणा अर्धेंदुमौली प्रसाद, अमृतेश राज, सुश्री श्रेया श्रीवास्तव, आशीष मदान, एस. अनन्या साहू, अहमद इब्राहिम, धीरज अब्राहम फिलिप, उत्तरदाताओं के लिए अधिवक्ता।

न्यायालय का निर्णय द्वारा प्रदान किया गया:

जे. बी. पादरीवाला, न्यायाधीश

1. अनुमति प्रदान की गई।
2. यह अपील मूल परिवादी (मृतका के पति) द्वारा प्रस्तुत की गई है तथा यह जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय, श्रीनगर द्वारा सीएम (एम) संख्या 99/2020 में पारित दिनांक 26.11.2020 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण आवेदन को अस्वीकार कर दिया और इस प्रकार अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, सोपोर (विचारण न्यायालय) द्वारा पारित उस आदेश की पुष्टि कर दी, जिसमें मूल अभियुक्त व्यक्तियों (यहां उत्तरदाता सं. 1 से 7) को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत दंडनीय हत्या के अपराध से आरोपमुक्त कर दिया

गया था। उक्त पुष्टि के पश्चात विचारण न्यायालय ने अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अंतर्गत दंडनीय आपराधिक मानव वध के अपराध हेतु आरोप निर्धारित किया।

<u>तथ्यात्मक पृष्ठभूमि</u>

3. ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता द्वारा डांगीवाचा स्थित पुलिस थाना में दर्ज कराई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) संख्या 26/20 दिनांक 22.03.2020 के अनुसार, दुर्भाग्यपूर्ण दिन पर अभियुक्त व्यक्तियों ने एक अवैध जमावड़ा बनाकर अपीलकर्ता तथा उसके परिवार के सदस्यों पर हमला किया, जब वे अपीलकर्ता के आवासीय परिसर में अतिक्रमण कर प्रवेश कर गए थे। अभियोजन का मामला यह है कि सभी अभियुक्त व्यक्तियों ने अपीलकर्ता के आवासीय परिसर में जबरन प्रवेश किया और टीन की बाड़ को नुकसान पहुंचाना प्रारंभ कर दिया। जब अपीलकर्ता ने अभियुक्त व्यक्तियों को आगे नुकसान पहुंचाने से रोकने का प्रयास किया, तब सभी अभियुक्तों ने अपीलकर्ता को घूंसे मारकर उस पर हमला करना प्रारंभ कर दिया। कहा जाता है कि अभियुक्त व्यक्तियों में से एक ने अपीलकर्ता को लकड़ी के लट्ठ से मारा। अपीलकर्ता की पत्नी तथा उसकी पुत्रवधू रूबीना रमजान अपीलकर्ता को बचाने के लिए आईं। आरोप है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने मृतका (अपीलकर्ता की पत्नी) तथा पुत्रवधू को पकड़ लिया और दोनों को मारपीट कर चोटें पहुंचाईं। यह भी आरोप है कि अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा परिवार की इन दोनों महिला सदस्यों को घसीटा गया, जिसके परिणामस्वरूप मृतका के कपड़े फट गए और इस प्रकार उसकी लज्जा भंग हुई।

4. उपरोक्त घटना के संबंध में अपीलकर्ता डांगीवाचा स्थित पुलिस थाना गया और एफआईआर दर्ज कराई। प्रारंभ में एफआईआर भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 354, 323 तथा 451 के अंतर्गत दंडनीय अपराधों के लिए दर्ज की गई थी। मृतका (अपीलकर्ता की पत्नी) को शरीर पर चोटें आने के कारण अस्पताल ले जाना पड़ा। मृतका को अस्पताल लाए जाने के तुरंत बाद ड्यूटी पर तैनात चिकित्सक द्वारा उसे मृत घोषित कर दिया गया। ऐसी परिस्थितियों में एफआईआर में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 जोड़ी गई। मृतका के शव का पोस्टमार्टम किया गया। घटना के विभिन्न प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथन दर्ज किए गए। विभिन्न पंचनामे तैयार किए गए। जांच पूर्ण होने के

पश्चात पुलिस ने अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध उपर्युक्त अपराधों सहित हत्या के अपराध के लिए आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

5. पोस्टमार्टम में मृतका की मृत्यु का कारण "कार्डियो रेस्पिरेटरी फेल्योर" बताया गया। विसरा में कोई विष नहीं पाया गया।

6. ऐसा प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने आरोप के प्रश्न पर अभियोजन तथा बचाव पक्ष दोनों की सुनवाई की। अंततः विचारण न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत दंडनीय हत्या के अपराध से अभियुक्त व्यक्तियों को आरोपमुक्त करना उचित समझा और भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अंतर्गत दंडनीय आपराधिक मानव वध के अपराध हेतु उनके विरुद्ध आरोप निर्धारित किया।

7. वर्तमान अपीलकर्ता ने विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त व्यक्तियों को हत्या के अपराध से आरोपमुक्त करने के ऐसे निर्णय से व्यथित होकर उक्त आदेश की वैधता एवं विधिसंगतता को उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन दायर कर चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने अभियुक्त व्यक्तियों को हत्या के अपराध से आरोपमुक्त करने संबंधी विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करना उचित समझा।

8. उपरोक्त वर्णित परिस्थितियों में अपीलकर्ता इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान अपील लेकर उपस्थित हुआ है।

<u>विश्लेषण</u>

9. पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के पश्चात हमारे विचारणीय मुद्दा मात्र यह है : क्या उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के उस आदेश की पुष्टि करना उचित था, जिसके द्वारा अभियुक्त व्यक्तियों को हत्या के अपराध से आरोपमुक्त किया गया था?

10. इस चरण में, हम अभियुक्त व्यक्तियों को हत्या के अपराध से आरोपमुक्त करने के उद्देश्य से विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट कारणों पर दृष्टि डाल सकते हैं।

11. विचारण न्यायालय ने अपने दिनांक 23.10.2020 के आदेश में पैरा 29 एवं 30 में निम्न प्रकार से अवलोकन किया :-

"29. अभियोजन के साक्ष्य, अभियोजन साक्षियों के कथनों तथा मृतका द्वारा मृत्यु से पूर्व दिए गए कथन का परीक्षण करने पर, जिनमें यह कहा गया है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने परिवादी के परिसर में प्रवेश किया और किसी वस्तु से परिवादी पर प्रहार किया, जिसके परिणामस्वरूप परिवादी घायल हो गया तथा अभियुक्त व्यक्तियों ने परिवादी की पत्नी और पुत्रवधू की लज्जा भंग की। कथित अपराध के घटित होने के तुरंत बाद दर्ज मृतका के दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अंतर्गत कथन का अवलोकन करने पर, मृतका ने कहा कि अभियुक्त व्यक्तियों ने परिसर में प्रवेश किया और उसके पति पर हमला किया, जिसे किसी वस्तु से प्रहार किया गया, जिसके परिणामस्वरूप वह घायल हो गया, जबकि वह और उसकी पुत्रवधू हस्तक्षेप करने का प्रयास कर रही थीं, जिस पर अभियुक्त व्यक्तियों ने उनके बाल पकड़ लिए और हाथों से मारपीट प्रारंभ कर दी, जिसके परिणामस्वरूप वह घायल हो गई और उसकी लज्जा भंग हुई। अभिलेख पर उपलब्ध चिकित्सीय राय से परिलक्षित होता है कि मृतका के शरीर के किसी अन्य भाग पर कोई चोट नहीं थी, सिवाय ऊपरी एवं निचले होंठों पर तथा चेहरे पर खरोंचों के। क्या ऐसे कृत्य से मृतका की मृत्यु हुई, इसका उल्लेख अभिलेख में कहीं भी नहीं किया गया है। चोट ज्ञापन में दर्शाई गई चोट भी ऐसे किसी परिणाम को प्रदर्शित नहीं करती जिससे मृतका की मृत्यु हो सकती थी। एफएसएल से प्राप्त रिपोर्ट भी ऐसी कोई बात प्रदर्शित नहीं करती जिससे किसी भी प्रकार से अपराध किए जाने के कारण मृत्यु होने का निष्कर्ष निकाला जा सके। इन परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तत्व सिद्ध होते हैं और वर्तमान मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत निर्धारित मापदंडों के भीतर नहीं आता।"

"30. दंड संहिता में दो प्रकार के मानव वध को मान्यता दी गई है - (i) आपराधिक मानव वध, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 299 से 304 के मध्य वर्णित है और (ii) गैर-आपराधिक मानव वध, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ए से संबंधित है। आपराधिक मानव वध के भी दो प्रकार हैं; (a) हत्या के समकक्ष आपराधिक मानव वध, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 300 एवं 302 के अंतर्गत आता है और (b) हत्या के समकक्ष न होने वाला आपराधिक मानव वध, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग

II के अंतर्गत आता है। यह धारा हत्या के समकक्ष न होने वाले आपराधिक मानव वध के लिए दंड का प्रावधान करती है। अभियुक्त व्यक्ति, जो बारामुला उप कारागार में निरुद्ध हैं, वर्चुअल माध्यम से प्रस्तुत हुए और उन्होंने दोष स्वीकार नहीं किया तथा विचारण की मांग की। आरोप पत्र की प्रति बारामुला उप कारागार के अधीक्षक को अभियुक्त व्यक्तियों के हस्ताक्षर प्राप्त करने हेतु भेजी गई, जो हस्ताक्षर प्राप्त करने के पश्चात उसे प्रमाणित कर इस न्यायालय को अग्रेषित करेंगे। अभियोजन अगली तिथि पर साक्ष्य प्रस्तुत करेगा। प्रकरण दिनांक 04.11.2020 को प्रस्तुत किया जाए।"

(जोर दिया गया)

12. उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित उपर्युक्त आदेश की पुष्टि करते हुए निम्न प्रकार से अभिमत व्यक्त किया :-

"9. विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अवलोकन से यह प्रकट होता है कि विचारण न्यायालय ने घायल साक्षियों सहित प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथनों तथा मृतका के कथन पर विचार करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकाला है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत अपराध के तत्व विद्यमान नहीं हैं। मृतका की चोट रिपोर्ट से परिलक्षित होता है कि उसका परीक्षण दिनांक 22.03.2020 को अपराह्न 3:15 बजे किया गया था और ऊपरी तथा निचले होंठों पर हल्का रक्तस्राव होने के अतिरिक्त मृतका आयशा बेगम के शरीर के किसी भी भाग पर कोई चोट नहीं थी तथा उस समय उसे हृदयाघात नहीं हुआ था। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में संबंधित चिकित्सा अधिकारी ने आयशा बेगम की मृत्यु के संबंध में यह राय दी है कि मृतका की मृत्यु पड़ोसियों के साथ कथित झड़प के इतिहास के साथ हृदयाघात के कारण हुई। स्वयं मृतका आयशा बेगम ने भी अपने कथन में कहा है कि उत्तरदाता सं. 1 से 7 उनके परिसर में प्रवेश किए और उसके पति (याचिकाकर्ता) पर प्रहार किया, जिसके परिणामस्वरूप वह घायल हो गया, और जब वह तथा उसकी पुत्रवधू हस्तक्षेप करने का प्रयास कर रही थीं, तब उन्होंने उन्हें भी पकड़ लिया और मारपीट शुरू कर दी, जिसके परिणामस्वरूप वह घायल हो गई और उसकी लज्जा भंग हुई। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में मृत्यु का कारण हृदयाघात बताया गया है, न कि यह कि मृतका की मृत्यु उसे लगी चोटों के परिणामस्वरूप हुई। यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि मृतका का परीक्षण दिनांक 22.03.2020 को अपराह्न 3:15 बजे

चिकित्सा अधिकारी द्वारा किया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत मृत्यु प्रमाण पत्र के अनुसार उसे दिनांक 23.03.2020 को प्रातः 1:37 बजे अस्पताल में मृत अवस्था में लाया गया घोषित किया गया। विचारण न्यायालय ने सही रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि उत्तरदाता सं. 1 से 7 के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत कोई अपराध सिद्ध नहीं होता। यह तर्क कि विचारण न्यायालय ने साक्ष्यों का समालोचनात्मक मूल्यांकन किया है, याचिकाकर्ता का यह कथन निराधार है, बल्कि विचारण न्यायालय ने केवल महत्वपूर्ण तथ्यों का परीक्षण किया है ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि निजी उत्तरदाताओं के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत अपराध के लिए आरोप निर्धारित करने हेतु पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है या नहीं, और विचारण न्यायालय का निष्कर्ष वास्तव में वही एकमात्र निष्कर्ष है जो अभियोजन द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री से निकाला जा सकता है।" (जोर दिया गया)

13. अब हम अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप निर्धारित करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पारित पृथक-पृथक आदेशों का संज्ञान लेंगे। आरोप निर्धारित करने संबंधी ऐसा ही एक आदेश इस प्रकार है :

"आप मिदासिर अहमद मगरे के विरुद्ध यह आरोप निर्धारित किया जाता है कि दिनांक 22.03.2020 को आपने अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के साथ मिलकर परिवादी के घर के आंगन में अतिक्रमण कर प्रवेश किया और आप सभी ने टीन की बाड़ को उखाड़ना प्रारंभ किया। जब परिवादी ने आप तथा अन्य अभियुक्त व्यक्तियों को किसी प्रकार की क्षति न पहुंचाने के लिए कहा, तब आप सभी ने परिवादी पर हथियार से हमला किया, जिसके परिणामस्वरूप परिवादी को चोटें आईं और वह जमीन पर गिर पड़ा। आपने परिवादी की पत्नी को भी चोटें पहुंचाईं और उसकी लज्जा भंग की। परिवादी की पत्नी की मृत्यु दिनांक 22/23.03.2020 की मध्यरात्रि में हो गई। अतः आपको भारतीय दंड संहिता की धारा 451, 323, 324 एवं 304 के अंतर्गत दंडनीय अपराधों के लिए विचारण का सामना करना होगा।"

14. अब हम दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'सीआरपीसी') की धारा 161 के अंतर्गत दिनांक 23.03.2020 को दर्ज प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों में से एक के पुलिस कथन का अवलोकन करेंगे। अन्य सभी प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथन भी समान स्वरूप के हैं। उक्त कथन इस प्रकार है :-

"वली मोहम्मद शेख का बयान, निवासी : गुलाम मोहिउद्दीन शेख, निवासी यारबुग, आयु - 59 वर्ष, व्यवसाय - किसान, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अंतर्गत दिनांक 23-03-2020।"

"मैं यारबुग का निवासी हूँ और पेशे से किसान हूँ। दिनांक 22-03-2020 को मैं नमाज़ अदा करने गया था और मस्जिद से अपने घर वापस लौट रहा था। रास्ते में मैंने देखा कि अभियुक्त व्यक्ति अर्थात (1) मोहम्मद मकबूल मगरी पुत्र मोहम्मद शाबान मगरी; (2) जाहूर अहमद मगरी पुत्र मोहम्मद शाबान मगरी; (3) तारिक अहमद मगरी पुत्र मोहम्मद शाबान मगरी; (4) मुदसिर अहमद मगरी पुत्र मोहम्मद शाबान मगरी; (5) अब्दुल राशिद बेग पुत्र मोहम्मद बेग; (6) सुहैल अहमद बेग पुत्र अब्दुल राशिद बेग; तथा (7) नासिर अहमद बेग पुत्र अब्दुल राशिद बेग, निवासी यारबुग रफियाबाद, पूर्व नियोजित षड्यंत्र के साथ एक अवैध जमावड़ा बनाकर परिवादी के आवासीय परिसर में प्रवेश कर गए और उसकी टीन की बाड़ को तोड़ना प्रारंभ कर दिया। परिवादी ने इस कृत्य का विरोध किया और उन्हें बताया कि उक्त टीन की दीवार आपसी सहमति से बनाई गई थी। यह सुनकर अभियुक्त व्यक्तियों ने, एक जमावड़ा बनाकर, परिवादी को पकड़ लिया और उसे लात-घूंसों से मारना प्रारंभ कर दिया। इसके अतिरिक्त, उन्होंने परिवादी को लकड़ी के लट्ठ से मारा, जिसके परिणामस्वरूप वह घायल हो गया। परिवादी की पत्नी, जिसका नाम मस्ट. आशिया बेगम है, तथा परिवादी की पुत्रवधू, जिसका नाम रूबीना रमजान है, परिवादी को बचाने के लिए आईं। अभियुक्त व्यक्तियों ने उन्हें भी पकड़ लिया और लात-घूंसों से मारपीट कर दोनों को चोटें पहुंचाईं। उक्त दोनों महिलाओं को अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा घसीटा गया, जिसके कारण उनकी लज्जा भंग हुई और परिवादी की पत्नी द्वारा पहना गया फेरन भी अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा फाड़ दिया गया। इसके पश्चात परिवादी ने उक्त घटना के संबंध में पुलिस थाना डांगीवाचा में लिखित शिकायत दर्ज कराई। रात्रि लगभग 10:00 बजे, परिवादी की पत्नी मस्ट.

आशिया बेगम, जिसे अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा मारपीट कर घायल किया गया था, ने गंभीर जटिलताओं की शिकायत की और उसे चिकित्सा उपचार हेतु अस्पताल ले जाया गया तथा रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई। वास्तव में, मृतका की मृत्यु अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा किए गए हमले, मारपीट तथा उनसे हुई चोटों के कारण हुई। आज पुलिस थाना डांगीवाचा ने मेरा कथन दर्ज किया और मैंने इस पर अपने हस्ताक्षर कर इसकी पुष्टि की। अतः यह मेरा बयान है।"

<u>विधिक स्थिति</u>

15. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 226, जूरी प्रणाली के उन्मूलन के कारण शब्दगत परिवर्तनों के साथ पुरानी धारा 286 की उपधारा (1) के अनुरूप है। सन् 1898 की संहिता की धारा 286 इस प्रकार है :-

"**286.(1)** ऐसे मामले में जिसका विचारण जूरी द्वारा किया जाना है, जब जूरी सदस्यों का चयन हो चुका हो या किसी अन्य मामले में जब न्यायाधीश प्रकरण की सुनवाई के लिए तैयार हो, तब अभियोजक भारतीय दंड संहिता या अन्य विधि से आरोपित अपराध का विवरण पढ़कर अपना मामला प्रारंभ करेगा तथा संक्षेप में यह बताएगा कि वह किन साक्ष्यों के माध्यम से अभियुक्त के दोष को सिद्ध करने की अपेक्षा करता है।

(2) तत्पश्चात अभियोजक अपने साक्षियों का परीक्षण करेगा।"

सन् 1973 की संहिता की धारा 226 इस प्रकार है :

"**226**. अभियोजन के लिए मामला प्रारंभ करना–जब अभियुक्त धारा 209 के अंतर्गत प्रकरण के समर्पण के अनुपालन में न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता है या लाया जाता है, तब अभियोजक अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए आरोप का वर्णन करते हुए अपना मामला प्रारंभ करेगा और यह बताएगा कि वह किन साक्ष्यों के माध्यम से अभियुक्त के दोष को सिद्ध करने का प्रस्ताव करता है।"

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 226 अभियोजन को प्रकरण के संबंध में प्रथम प्रभाव प्रस्तुत करने की अनुमति देती है, जिसे बाद में समाप्त करना कठिन हो सकता है। यदि अभियोजन धारा 226 के अंतर्गत अपने अधिकार का प्रयोग करने पर बल नहीं देता, तो वह स्वयं अपने प्रति प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न करेगा। यदि अभियुक्त यह तर्क देता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 226 का पालन न किए जाने के कारण उसके विरुद्ध

मामला स्पष्ट नहीं किया गया है, तो इसका उत्तर यह होगा कि प्रकरण में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) के अंतर्गत प्रस्तुत रिपोर्ट उससे संबंधित पर्याप्त जानकारी प्रदान करती है, और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 228 के अंतर्गत आरोप निर्धारित करने का चरण, धारा 227 के चरण को पार करने के पश्चात आता है, जो अभियोजन तथा अभियुक्त दोनों को अपने-अपने तर्क प्रस्तुत करने का समुचित अवसर प्रदान करता है।

16.दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 इस प्रकार है :

"**227. आरोपमुक्ति**–

यदि प्रकरण के अभिलेख तथा उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने के पश्चात तथा इस संबंध में अभियुक्त और अभियोजन की दलीलों को सुनने के बाद न्यायाधीश यह विचार करता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह अभियुक्त को आरोपमुक्त करेगा और ऐसा करने के अपने कारण अभिलिखित करेगा।"

17.दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 228 इस प्रकार है :

"**228. आरोप का निर्धारण**–

(1) यदि उपर्युक्त प्रकार से विचार करने तथा सुनवाई करने के पश्चात न्यायाधीश का यह मत हो कि यह अनुमान करने के लिए आधार है कि अभियुक्त ने ऐसा अपराध किया है जो–

(क) सत्र न्यायालय द्वारा विशेष रूप से विचारणीय नहीं है, तो वह अभियुक्त के विरुद्ध आरोप निर्धारित कर सकता है और आदेश द्वारा प्रकरण को विचारण हेतु मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या किसी अन्य प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट को स्थानांतरित कर सकता है तथा अभियुक्त को उस तिथि पर, जिसे वह उचित समझे, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या, जैसा मामला हो, प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश देगा, और तत्पश्चात ऐसा मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट पर आरंभ किए गए वारंट प्रकरणों के विचारण की प्रक्रिया के अनुसार अपराध का विचारण करेगा;

(ख) सत्र न्यायालय द्वारा विशेष रूप से विचारणीय है, तो वह अभियुक्त के विरुद्ध लिखित रूप में आरोप निर्धारित करेगा।

(2) जहां न्यायाधीश उपधारा (1) के खंड (ख) के अंतर्गत कोई आरोप निर्धारित करता है, वहां आरोप अभियुक्त को पढ़कर सुनाया जाएगा और समझाया जाएगा तथा अभियुक्त

से पूछा जाएगा कि क्या वह आरोपित अपराध के लिए दोष स्वीकार करता है या विचारण की मांग करता है।"

18. आरोप निर्धारित करने का उद्देश्य अभियुक्त को उस आरोप की स्पष्ट, असंदिग्ध तथा सटीक प्रकृति से अवगत कराना है जिसका सामना उसे विचारण के दौरान करना होता है। [देखें : इस न्यायालय की चार न्यायाधीशों की पीठ **द्वारा वी.सी. शुक्ला बनाम राज्य, सी.बी.आई**. के माध्यम से, (1980) सप्लीमेंट एससीसी 92 : 1980 एससीसी (आपराधिक) 695 में प्रतिवेदित निर्णय]

19. मामला सत्र प्रकरण, वारंट प्रकरण अथवा समन प्रकरण हो सकता है, परंतु महत्वपूर्ण बात यह है कि आरोप निर्धारित किए जाने से पूर्व प्रथम दृष्टया मामला स्थापित होना आवश्यक है। मूलतः दंड प्रक्रिया संहिता में तीन युग्म धाराएं हैं। वे हैं–सत्र विचारण से संबंधित धारा 227 एवं 228; वारंट प्रकरणों के विचारण से संबंधित धारा 239 एवं 240; तथा समन प्रकरणों के विचारण से संबंधित धारा 245(1) एवं (2)।

20. समय के साथ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 226 प्रायः उपेक्षित हो गई है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 226 के प्रावधान के संबंध में हमारी समझ यह है कि न्यायालय द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध आरोप निर्धारित करने से पूर्व लोक अभियोजक का दायित्व है कि वह अभियोजन के मामले के संबंध में न्यायालय को निष्पक्ष एवं समुचित जानकारी प्रदान करे।

21. इस न्यायालय ने **भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल एवं अन्य**, (1979) 3 एससीसी 4 में यह विचार किया कि आरोप निर्धारित करने के प्रश्न पर विचार करते समय न्यायाधीश को किस सीमा तक जांच करनी अपेक्षित है। इस विषय पर न्यायिक दृष्टांतों का विस्तृत परीक्षण करने के पश्चात इस न्यायालय ने निर्णय के पैरा 10 में निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित किए:-

> *"(1) यह कि संहिता की धारा 227 के अंतर्गत आरोप निर्धारित करने के प्रश्न पर विचार करते समय न्यायाधीश के पास यह निर्विवाद अधिकार होता है कि वह सीमित उद्देश्य के लिए साक्ष्यों का परीक्षण और मूल्यांकन करे, ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला स्थापित होता है या नहीं।*

(2) जहां न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री अभियुक्त के विरुद्ध गंभीर संदेह उत्पन्न करती है, जिसका समुचित स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, वहां न्यायालय आरोप निर्धारित करने तथा विचारण आगे बढ़ाने के लिए पूर्णतः न्यायोचित होगा।

(3) प्रथम दृष्टया मामले का निर्धारण करने की कसौटी स्वाभाविक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगी और इसके लिए सार्वभौमिक रूप से लागू होने वाला कोई नियम निर्धारित करना कठिन है। तथापि, सामान्यतः यदि दो दृष्टिकोण समान रूप से संभव हों और न्यायाधीश इस बात से संतुष्ट हो कि उसके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य अभियुक्त के विरुद्ध कुछ संदेह तो उत्पन्न करते हैं, किंतु गंभीर संदेह नहीं, तो वह अभियुक्त को आरोपमुक्त करने के लिए पूर्णतः अधिकारयुक्त होगा।

(4) संहिता की धारा 227 के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय न्यायाधीश, जो वर्तमान संहिता के अंतर्गत वरिष्ठ एवं अनुभवी न्यायाधीश होता है, केवल डाकघर या अभियोजन के प्रवक्ता के रूप में कार्य नहीं कर सकता, बल्कि उसे मामले की व्यापक संभावनाओं, साक्ष्य तथा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों के समग्र प्रभाव, मामले में विद्यमान किसी मूलभूत त्रुटि आदि पर विचार करना होता है। तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि न्यायाधीश मामले के पक्ष एवं विपक्ष की व्यापक जांच प्रारंभ कर दे और साक्ष्यों का मूल्यांकन इस प्रकार करे मानो वह विचारण का संचालन कर रहा हो।"

22. इस न्यायालय के अनेक अन्य निर्णय भी हैं, जिनमें आपराधिक मामले में आरोप निर्धारण के संबंध में न्यायालय की शक्तियों की सीमा का निरूपण किया गया है। उनमें से एक है **दीपकभाई जगदीशचंद्र पटेल बनाम गुजरात राज्य**, (2019) 16 एससीसी 547, जिसमें आरोप निर्धारण तथा आरोपमुक्ति से संबंधित विधि पर क्रमशः अनुच्छेद 15 और 23 में विस्तार से चर्चा की गई है, जिन्हें निम्नानुसार उद्धृत किया जाता है:

"15 इस संदर्भ में, हम इस न्यायालय के निर्णय बिहार राज्य बनाम रमेश सिंह का लाभप्रद रूप से उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें इस न्यायालय ने आरोप निर्धारण तथा आरोपमुक्ति से संबंधित सिद्धांतों को निम्नानुसार प्रतिपादित किया है:"

"4.....धारा 227 और 228 को साथ-साथ, जैसा कि उन्हें पढ़ा जाना चाहिए, रखने पर यह स्पष्ट होगा कि विचारण के प्रारंभिक चरण में अभियोजक द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्यों की सत्यता, विश्वसनीयता और प्रभाव का सूक्ष्म परीक्षण नहीं किया जाना है। न ही अभियुक्त के संभावित बचाव को कोई महत्व दिया जाना है। विचारण के उस चरण पर न्यायाधीश के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि वह विस्तार से इस बात पर विचार करे और अत्यंत सूक्ष्म संतुलन में तौले कि यदि तथ्य सिद्ध हो जाएं तो वे अभियुक्त की निर्दोषता के प्रतिकूल होंगे या नहीं। अभियुक्त के दोष या निर्दोषता के संबंध में अंतिम निष्कर्ष दर्ज करने से पूर्व जो परीक्षण और निर्णय का मानदंड अपनाया जाना है, वही मानदंड धारा 227 या धारा 228 के अंतर्गत प्रश्न का निर्णय करते समय लागू नहीं किया जाना है। उस चरण पर न्यायालय को यह नहीं देखना है कि अभियुक्त के दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं अथवा विचारण का अंत निश्चित रूप से उसकी दोषसिद्धि में होगा या नहीं। अभियुक्त के विरुद्ध प्रबल संदेह, यदि वह केवल संदेह के क्षेत्र में ही बना रहता है, तो विचारण के अंत में उसके दोष के प्रमाण का स्थान नहीं ले सकता। परंतु प्रारंभिक चरण पर यदि ऐसा प्रबल संदेह हो जो न्यायालय को यह सोचने के लिए प्रेरित करे कि यह अनुमान करने का आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, तो न्यायालय के लिए यह कहना खुला नहीं है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने हेतु पर्याप्त आधार नहीं है। प्रारंभिक चरण में जो अभियुक्त के दोष का अनुमान लगाया जाता है, वह फ्रांस में आपराधिक मामलों के विचारण को नियंत्रित करने वाले विधि सिद्धांत के अर्थ में नहीं है, जहां अभियुक्त को तब तक दोषी माना जाता है जब तक विपरीत सिद्ध न हो जाए। बल्कि यह केवल इस उद्देश्य के लिए है कि यह निर्धारित किया जा सके कि न्यायालय को विचारण आगे बढ़ाना चाहिए या नहीं। यदि अभियोजक द्वारा अभियुक्त के दोष को सिद्ध करने हेतु प्रस्तावित साक्ष्य, भले ही उन्हें पूर्णतः स्वीकार कर लिया जाए, और उन्हें जिरह में चुनौती न दी जाए या यदि कोई हो तो बचाव साक्ष्य द्वारा खंडित न किया जाए, तब भी यह प्रदर्शित न कर सकें कि अभियुक्त ने अपराध किया है, तो विचारण आगे बढ़ाने के लिए पर्याप्त आधार नहीं होगा। यदि विचारण के अंत में अभियुक्त के दोष या निर्दोषता के संबंध में तराजू के पलड़े लगभग समान हों, तो संदेह का लाभ सिद्धांत के अनुसार प्रकरण उसके बरी होने पर समाप्त होगा। किंतु यदि धारा 227 या धारा 228 के अंतर्गत आदेश पारित करने के

प्रारंभिक चरण में ही ऐसी स्थिति हो, तो सामान्यतः और प्रायः जो आदेश पारित किया जाना चाहिए, वह धारा 228 के अंतर्गत होगा, न कि धारा 227 के अंतर्गत।"

"23. इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुसार आरोप निर्धारित करने के चरण पर न्यायालय मात्र डाकघर की भांति कार्य नहीं करता। न्यायालय को अपने समक्ष उपलब्ध सामग्री का परीक्षण अवश्य करना होता है। जिस सामग्री का परीक्षण किया जाना है, वह वही सामग्री है जिसे अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किया गया है और जिस पर वह निर्भर करता है। यह परीक्षण इस अर्थ में सूक्ष्म नहीं होना चाहिए कि न्यायालय पूर्ण विचारण के पश्चात समस्त साक्ष्य प्रस्तुत हो जाने पर अंतिम तर्क सुनने वाले विचारण न्यायाधीश की भूमिका धारण कर ले, और यह प्रश्न नहीं है कि अभियोजन ने अभियुक्त की दोषसिद्धि के लिए मामला सिद्ध कर दिया है या नहीं। आवश्यक केवल इतना है कि न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो कि उपलब्ध सामग्री के आधार पर अभियुक्त के विरुद्ध विचारण चलाने का मामला बनता है। प्रबल संदेह पर्याप्त है। हालांकि, प्रबल संदेह कुछ सामग्री पर आधारित होना चाहिए। वह सामग्री ऐसी होनी चाहिए जिसे विचारण के चरण पर साक्ष्य के रूप में रूपांतरित किया जा सके। प्रबल संदेह न्यायाधीश की नैतिक धारणाओं पर आधारित शुद्ध व्यक्तिपरक संतुष्टि नहीं हो सकता कि यह ऐसा मामला है जिसमें संभव है कि अभियुक्त ने अपराध किया हो। प्रबल संदेह वह संदेह होना चाहिए जो ऐसी सामग्री पर आधारित हो जो न्यायालय को प्रथम दृष्टया यह मानने के लिए पर्याप्त प्रतीत हो कि अभियुक्त ने अपराध किया है।"

23. सज्जन कुमार बनाम सीबीआई [(2010) 9 एससीसी 368 : (2010) 3 एससीसी (आपराधिक) 1371] में, इस न्यायालय को धारा 227 और 228 दंड प्रक्रिया संहिता के दायरे पर विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ से निकले सिद्धांतों को पैरा 21 में निम्नानुसार उल्लेख किया गया है (एससीसी पीपी 376-77):

"21. संहिता की धारा 227 एवं 228 के क्षेत्राधिकार के संबंध में न्यायिक निर्णयों पर विचार करने के उपरांत निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपन्न होते हैं :

(i) धारा 227 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आरोप निर्धारित करने के प्रश्न पर विचार करते समय न्यायाधीश के पास यह निर्विवाद अधिकार होता है कि वह

सीमित उद्देश्य के लिए साक्ष्यों का परीक्षण एवं मूल्यांकन करे, ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला स्थापित होता है या नहीं। प्रथम दृष्टया मामले का निर्धारण प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा।

(ii) जहां न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री अभियुक्त के विरुद्ध गंभीर संदेह उत्पन्न करती है, जिसका समुचित स्पष्टीकरण नहीं किया गया है, वहां न्यायालय आरोप निर्धारित करने तथा विचारण आगे बढ़ाने के लिए पूर्णतः न्यायोचित होगा।

(iii) न्यायालय मात्र डाकघर या अभियोजन के प्रवक्ता के रूप में कार्य नहीं कर सकता, बल्कि उसे मामले की व्यापक संभावनाओं, साक्ष्य एवं न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों के समग्र प्रभाव, किसी मूलभूत त्रुटि आदि पर विचार करना होता है। तथापि, इस चरण पर मामले के पक्ष-विपक्ष की व्यापक जांच नहीं की जा सकती और न ही साक्ष्यों का मूल्यांकन इस प्रकार किया जा सकता है मानो विचारण संचालित किया जा रहा हो।

(iv) यदि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर न्यायालय यह मत बना सके कि अभियुक्त ने अपराध किया हो सकता है, तो वह आरोप निर्धारित कर सकता है, यद्यपि दोषसिद्धि के लिए यह निष्कर्ष संदेह से परे सिद्ध किया जाना आवश्यक है कि अभियुक्त ने अपराध किया है।

(v) आरोप निर्धारित करने के समय अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के प्रमाणिक मूल्य का परीक्षण नहीं किया जा सकता, किंतु आरोप निर्धारित करने से पूर्व न्यायालय को अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री पर अपना न्यायिक मन लागू करना होगा और इस बात से संतुष्ट होना होगा कि अभियुक्त द्वारा अपराध किया जाना संभव था।

(vi) धारा 227 एवं 228 के चरण पर न्यायालय को अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री एवं दस्तावेजों का मूल्यांकन इस दृष्टि से करना आवश्यक है कि उनसे प्रथम दृष्टया आरोपित अपराध के सभी तत्वों का अस्तित्व प्रकट होता है या नहीं। इस सीमित उद्देश्य के लिए साक्ष्यों का परीक्षण किया जा सकता है, क्योंकि इस प्रारंभिक चरण पर भी अभियोजन के प्रत्येक कथन को अक्षरशः सत्य मान लेना अपेक्षित

नहीं है, विशेषकर यदि वह सामान्य बुद्धि या मामले की व्यापक संभावनाओं के प्रतिकूल हो।

(vii) यदि दो दृष्टिकोण संभव हों और उनमें से एक केवल संदेह उत्पन्न करता हो, जो गंभीर संदेह से भिन्न हो, तो विचारण न्यायाधीश अभियुक्त को आरोपमुक्त करने के लिए सशक्त होगा, और इस चरण पर उसे यह नहीं देखना है कि विचारण का अंत दोषसिद्धि में होगा या बरी होने में।"

24. इस विषय पर कानून का प्रतिपादन इस न्यायालय द्वारा **राज्य बनाम एस. सेल्वी**, (2018) 13 एससीसी 455 : (2018) 3 एससीसी (आपराधिक) 710 में और आगे विचार किया गया, जिसका अनुसरण **विक्रम जोहर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**, (2019) 14 एससीसी 207 : 2019 एससीसी ऑनलाइन एससी 609 : (2019) 6 स्केल 794 में किया गया।

25. असीम शरीफ बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी, (2019) 7 एससीसी 148 के मामले में, इस न्यायालय ने, जिसमें हममें से एक (ए.एम. खानविलकर, जे.) पक्षकार था, स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्ति की है कि ट्रायल कोर्ट से यह अपेक्षित या अपेक्षित नहीं है कि साक्ष्यों को रिकॉर्ड पर संकलित करने के उद्देश्य से एक मिनी ट्रायल आयोजित करे। हम प्रासंगिक टिप्पणियों को निम्नानुसार उद्धृत करते हैं:-

"18. इस विषय पर इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि सिद्धांतों का संज्ञान लेते हुए यह स्थापित है कि सत्र प्रकरणों में धारा 227 दंड प्रक्रिया संहिता (जो वारंट प्रकरणों से संबंधित धारा 239 दंड प्रक्रिया संहिता के समरूप है) के अंतर्गत आरोप निर्धारित करने के प्रश्न पर विचार करते समय न्यायाधीश के पास यह निर्विवाद अधिकार होता है कि वह सीमित उद्देश्य के लिए साक्ष्यों का परीक्षण एवं मूल्यांकन करे, ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला स्थापित होता है या नहीं। जहां न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री अभियुक्त के विरुद्ध गंभीर संदेह उत्पन्न करती है, जिसका समुचित स्पष्टीकरण नहीं किया गया है, वहां न्यायालय आरोप निर्धारित करने के लिए पूर्णतः न्यायोचित होगा। सामान्यतः यदि दो दृष्टिकोण संभव हों और उनमें से एक केवल संदेह उत्पन्न करता हो, जो अभियुक्त के विरुद्ध गंभीर संदेह से भिन्न हो, तो विचारण न्यायाधीश उसे आरोपमुक्त करने के लिए न्यायोचित होगा।

अतः यह स्पष्ट है कि <u>धारा 227</u> दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दायर आरोपमुक्ति आवेदन का परीक्षण करते समय विचारण न्यायाधीश से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने न्यायिक मन का प्रयोग करते हुए यह निर्धारित करे कि विचारण चलाने का मामला बनता है या नहीं। यह सत्य है कि ऐसी कार्यवाही में न्यायालय को अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का संकलन करते हुए लघु विचारण नहीं करना चाहिए।"

26. कर्नाटक राज्य बनाम एम.आर. हीरमथ, (2019) 7 एससीसी 515 में प्रतिवेदित मामले में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्दिष्ट किया:-

"25. उच्च न्यायालय को इस तथ्य से अवगत होना चाहिए था कि विचारण न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के प्रावधानों के अंतर्गत आरोपमुक्ति आवेदन पर विचार कर रहा था। इस अधिकार क्षेत्र के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले मानदंडों का प्रतिपादन इस न्यायालय के अनेक निर्णयों में किया गया है। यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि आरोपमुक्ति आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय को इस आधार पर आगे बढ़ना चाहिए कि अभियोजन द्वारा अभिलेख पर लाई गई सामग्री सत्य है और उस सामग्री का मूल्यांकन इस उद्देश्य से करना चाहिए कि क्या उस सामग्री से, उसके प्रत्यक्ष स्वरूप में स्वीकार करने पर, आरोपित अपराध के गठन हेतु आवश्यक तत्वों का अस्तित्व प्रकट होता है। तमिलनाडु राज्य बनाम एन. सुरेश राजन, (2014) 11 एससीसी 709 में, इस विषय पर पूर्ववर्ती निर्णयों का उल्लेख करते हुए, इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा : (एससीसी पृष्ठ 721-22, पैरा 29)

29. ... इस चरण पर सामग्री के प्रमाणिक मूल्य का परीक्षण किया जाना है और न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह मामले की गहराई में जाकर यह निष्कर्ष निकाले कि प्रस्तुत सामग्री दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त नहीं होगी। हमारे मत में विचार करने की आवश्यकता इस बात की है कि क्या यह अनुमान करने का आधार है कि अपराध किया गया है, न कि यह कि अभियुक्त को दोषसिद्ध करने का आधार स्थापित हो गया है। दूसरे शब्दों में, यदि न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के प्रमाणिक मूल्य के आधार पर यह विचार करे कि अभियुक्त ने अपराध किया हो सकता है, तो वह आरोप निर्धारित कर सकता है; यद्यपि दोषसिद्धि के लिए न्यायालय को यह निष्कर्ष

निकालना होगा कि अभियुक्त ने अपराध किया है। इस चरण पर विधि लघु विचारण की अनुमति नहीं देती।"

27. अतः उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि आरोप निर्धारित करने के समय विचारण न्यायालय पर अपने न्यायिक मन का प्रयोग करने का दायित्व होता है और उसे मात्र डाकघर की भांति कार्य नहीं करना चाहिए। पुलिस द्वारा प्रस्तुत आरोप पत्र पर बिना अपने विवेक का प्रयोग किए तथा अपने मत के समर्थन में संक्षिप्त कारण अभिलिखित किए बिना यथावत अनुमोदन करना विधि द्वारा स्वीकार्य नहीं है। तथापि, आरोप निर्धारित करने के समय न्यायालय द्वारा जिस सामग्री का मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है, वह वही सामग्री होनी चाहिए जो अभियोजन द्वारा प्रस्तुत की गई हो और जिस पर वह निर्भर करता है। ऐसी सामग्री का परीक्षण इतना सूक्ष्म नहीं होना चाहिए कि वह प्रक्रिया लघु विचारण में परिवर्तित हो जाए, जिससे अभियुक्त के दोषी या निर्दोष होने का निर्धारण किया जाने लगे। इस चरण पर केवल इतना आवश्यक है कि न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो कि अभियोजन द्वारा एकत्रित साक्ष्य यह अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त है कि अभियुक्त ने अपराध किया है। यहां तक कि प्रबल संदेह भी पर्याप्त होगा। निस्संदेह, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अंतर्गत अंतिम रिपोर्ट के रूप में अभियोजन द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री के अतिरिक्त, न्यायालय किसी अन्य ऐसे साक्ष्य या सामग्री पर भी निर्भर कर सकता है जो उच्च कोटि की हो तथा अभियोजन द्वारा आरोपित आरोप से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित हो। (देखें : **भावना बाई बनाम घनश्याम**, (2020) 2 एससीसी 217)।

28. **अमित कपूर बनाम रमेश चंदर**, (2012) 9 एससीसी 460 में, इस न्यायालय ने पैरा 30 में यह अवलोकन किया कि विधायिका ने अपनी सूझबूझ से *"यह अनुमान करने का आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है" जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। इसमें अनुमान का अंतर्निहित तत्व निहित है। न्यायालय ने* ***महाराष्ट्र राज्य बनाम सोम नाथ थापा एवं अन्य****, (1996) 4 एससीसी 659 में दिए गए अपने निर्णय का उल्लेख करते हुए "presume" शब्द के अर्थ पर विचार किया और ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी पर निर्भर करते हुए इसे "संभावित साक्ष्य के आधार पर विश्वास करना या स्वीकार करना" तथा "विपरीत साक्ष्य उपलब्ध होने तक सत्य मान लेना" के रूप में परिभाषित किया। दूसरे शब्दों में, मामले की सत्यता तब स्पष्ट होती है जब अभियोजन साक्ष्य प्रस्तुत करता है, साक्षियों का बचाव पक्ष द्वारा जिरह किया जाता है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत अभियुक्त के समक्ष आरोपित सामग्री एवं साक्ष्य रखे जाते हैं, और*

तत्पश्चात अभियुक्त को, यदि कोई हो, तो बचाव साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाता है। इन्हीं चरणों की पूर्णता के पश्चात विचारण समाप्त होता है और न्यायालय अपना अंतिम मत बनाकर निर्णय प्रदान करता है....." (जोर दिया गया)

29. वर्तमान मामले में विचारण न्यायालय ने क्या किया? हमारे मन में कोई संदेह नहीं है कि विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का संकलन करते हुए वस्तुतः एक लघु विचारण कर डाला। विचारण न्यायालय ने केवल अभिलेख पर उपलब्ध चिकित्सीय साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए अभियुक्त व्यक्तियों को हत्या के अपराध से आरोपमुक्त करना उचित समझा और भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अंतर्गत आपराधिक मानव वध के अपराध हेतु आरोप निर्धारित किया। विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय दोनों इस तथ्य से प्रभावित हुए कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट में मृतका की मृत्यु का कारण "कार्डियो रेस्पिरेटरी फेल्योर" बताया गया है, अतः इसे मृतका पर किए गए कथित हमले से संबंधित नहीं माना जा सकता। विचारण न्यायालय का ऐसा दृष्टिकोण सही नहीं है और विधि में स्वीकार्य नहीं है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट अपने आप में ठोस साक्ष्य नहीं होती। "कार्डियो रेस्पिरेटरी फेल्योर" का संबंधित घटना से कोई संबंध था या नहीं, इसका निर्धारण प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के मौखिक साक्ष्य तथा संबंधित चिकित्सा अधिकारी, अर्थात विशेषज्ञ साक्षी, जिसे अभियोजन अपने साक्षियों में से एक के रूप में परीक्षित कर सकता है, के साक्ष्य के आधार पर किया जाना आवश्यक था। दूसरे शब्दों में, मृत्यु के कारण का अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा मृतका पर किए गए कथित हमले से कोई संबंध है या नहीं, इसका निर्णय केवल प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों एवं विशेषज्ञ साक्षी के मौखिक साक्ष्य तथा अभिलेख पर उपलब्ध अन्य ठोस साक्ष्यों के अभिलेखन के पश्चात ही किया जा सकता था। डॉक्टर की पोस्टमार्टम रिपोर्ट मृत शरीर के परीक्षण के आधार पर दिया गया उसका पूर्व कथन होती है। यह ठोस साक्ष्य नहीं है। न्यायालय में डॉक्टर का कथन ही एकमात्र ठोस साक्ष्य होता है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट का उपयोग केवल धारा 157 के अंतर्गत उसके कथन की पुष्टि करने, अथवा धारा 159 के अंतर्गत उसकी स्मृति को ताज़ा करने, अथवा साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 145 के अंतर्गत साक्षी मंच पर दिए गए उसके कथन का खंडन करने के लिए किया जा सकता है। न्यायालय की सहायता के लिए विशेषज्ञ के रूप में बुलाया गया चिकित्सीय साक्षी तथ्य का साक्षी नहीं होता और चिकित्सा अधिकारी द्वारा दिया गया साक्ष्य वास्तव में परीक्षण के दौरान पाए गए लक्षणों के आधार पर दिया गया परामर्शात्मक स्वरूप का होता है। विशेषज्ञ

साक्षी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह न्यायालय के समक्ष समस्त सामग्री, जिनमें वे आँकड़े भी सम्मिलित हों जिनके आधार पर उसने अपना निष्कर्ष निकाला है, प्रस्तुत करे तथा विज्ञान संबंधी शब्दों की व्याख्या करते हुए मामले के तकनीकी पक्ष पर न्यायालय को अवगत कराए, ताकि न्यायालय, यद्यपि स्वयं विशेषज्ञ नहीं है, फिर भी विशेषज्ञ की राय को समुचित महत्व देते हुए उन सामग्रियों के आधार पर अपना स्वतंत्र निर्णय बना सके, क्योंकि एक बार विशेषज्ञ की राय स्वीकार कर ली जाती है, तो वह चिकित्सा अधिकारी की राय न रहकर न्यायालय की राय बन जाती है।

30. अभियोजन को यह अवसर दिया जाना चाहिए था कि वह संबंधित चिकित्सा अधिकारी के माध्यम से मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत कर पोस्टमार्टम रिपोर्ट सहित सभी प्रासंगिक तथ्यों को सिद्ध करे और इस प्रकार विशेषज्ञ की राय प्राप्त करे। विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकालना अत्यंत शीघ्रता थी कि चूंकि पोस्टमार्टम रिपोर्ट में कोई गंभीर चोटें अंकित नहीं हैं, इसलिए "कार्डियो रेस्पिरेटरी फेल्योर" के कारण हुई मृतका की मृत्यु का संबंधित घटना से कोई संबंध नहीं माना जा सकता।

31. मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत आता है या धारा 304 भाग II के अंतर्गत, इसका निर्णय विचारण न्यायालय केवल तभी कर सकता था जब अभियोजन तथा, यदि कोई हो, तो बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत समस्त मौखिक साक्ष्य अभिलेख पर आ जाए और उसका मूल्यांकन कर लिया जाए। अंततः, विचारण की समाप्ति पर अभिलेख पर उपलब्ध समस्त साक्ष्यों के समुचित परीक्षण के पश्चात विचारण न्यायालय यह निर्णय ले सकता है कि यह हत्या का मामला है अथवा आपराधिक मानव वध का मामला है। परंतु आरोप निर्धारित करने के चरण पर विचारण न्यायालय केवल अभिलेख पर उपलब्ध पोस्टमार्टम रिपोर्ट पर निर्भर करते हुए ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाल सकता था। उच्च न्यायालय ने भी विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में निहित ऐसी मूलभूत त्रुटि की उपेक्षा की और उसकी पुष्टि कर दी।

32. अब हम वर्तमान मुद्दे पर एक भिन्न दृष्टिकोण से विचार कर सकते हैं। यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि किसी आपराधिक विचारण में अभियोजन केवल वही साक्ष्य प्रस्तुत कर सकता है जो विचारण न्यायालय द्वारा निर्धारित आरोप के अनुरूप हो। जहां उच्चतर आरोप निर्धारित नहीं किया गया है, जबकि उसके समर्थन में साक्ष्य उपलब्ध है, वहां अभियुक्त यह

मानने का अधिकारी होता है कि उसे केवल उस कम गंभीर अपराध के संबंध में अपना बचाव प्रस्तुत करना है जिसके लिए उस पर आरोप लगाया गया है। ऐसी स्थिति में उसके लिए उन अपराधों से संबंधित साक्ष्यों का सामना करना आवश्यक नहीं होता जिनके लिए उस पर आरोप नहीं लगाया गया है। उसे केवल निर्धारित आरोप का उत्तर देना होता है। संहिता उससे यह अपेक्षा नहीं करती कि वह अभियोजन द्वारा प्रस्तुत सभी साक्ष्यों का सामना करे। उसे केवल उस साक्ष्य का खंडन करना होता है जो आरोप से संबंधित हो। अभियोजन का मामला आवश्यक रूप से आरोप द्वारा सीमित होता है। आरोप ही विचारण की आधारशिला है और उसी से विचारण प्रारंभ होता है, तथा अभियुक्त विधिसम्मत रूप से अपने विरुद्ध लगाए गए आरोप के विषय पर ही ध्यान केंद्रित कर सकता है। उसे उन अपराधों के संबंध में साक्षियों से जिरह करने की आवश्यकता नहीं होती जिनके लिए उस पर आरोप नहीं लगाया गया है और न ही उसे ऐसे आरोपों के संबंध में बचाव साक्ष्य प्रस्तुत करना आवश्यक होता है।

33. एक बार जब विचारण न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत दंडनीय अपराध से अभियुक्त को आरोपमुक्त करने का निर्णय ले लेता है और उसके पश्चात भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग II के अंतर्गत कम गंभीर अपराध के लिए आरोप निर्धारित करता है, तो उसके बाद अभियोजन निर्धारित आरोप से परे कोई साक्ष्य प्रस्तुत करने की स्थिति में नहीं रहता। दूसरे शब्दों में, अभियोजन को तत्पश्चात इस प्रकार आगे बढ़ना पड़ता है मानो अब उसे केवल आपराधिक मानव वध का मामला सिद्ध करना है, न कि हत्या का। दूसरी ओर, यदि विचारण न्यायालय अभियोजन द्वारा आरोप पत्र में प्रस्तुत मामले के अनुरूप भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत आरोप निर्धारित करता है, तब भी विचारण के अंत में अभियुक्त के लिए यह खुला रहता है कि वह न्यायालय को यह विश्वास दिलाए कि मामला केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अंतर्गत दंडनीय आपराधिक मानव वध के दायरे में आता है। ऐसी परिस्थितियों में, वर्तमान मामले के तथ्यों में यह अधिक विवेकपूर्ण होगा कि अभियोजन को उसके आरोप पत्र में प्रस्तुत मूल मामले के अनुसार, जो भी उपयुक्त साक्ष्य हों, उन्हें प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाए। विचारण न्यायालय का ऐसा दृष्टिकोण अनेक बार अधिक तर्कसंगत और विवेकपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

34. उपर्युक्त चर्चा के परिप्रेक्ष्य में, उच्च न्यायालय का आदेश तथा विचारण न्यायालय का आदेश, दोनों ही निरस्त किए जाने योग्य हैं।

35. फलस्वरूप, यह अपील सफल होती है और इसे स्वीकार किया जाता है। उच्च न्यायालय तथा विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को निरस्त किया जाता है। विचारण न्यायालय अब इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए विधि के अनुसार आरोप निर्धारण के संबंध में नया आदेश पारित करेगा।

36. हम स्पष्ट करते हैं कि हमने अन्यथा मामले के गुण-दोष के संबंध में कोई मत व्यक्त नहीं किया है। इस निर्णय में की गई टिप्पणियां पूर्णतः *प्रथम दृष्टया* हैं और केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत दंडनीय हत्या के अपराध से अभियुक्त व्यक्तियों को आरोपमुक्त करने वाले आदेश की वैधता एवं विधिसंगतता का निर्णय करने के उद्देश्य से प्रासंगिक हैं। हम पुनः स्पष्ट करते हैं कि विचारण की समाप्ति पर अपराध की प्रकृति के संबंध में उपयुक्त निर्णय लेना विचारण न्यायालय का ही दायित्व होगा।

देविका गुजराल
(सहायक : राहुल राठी, एलसीआरए)) *अपील अनुमत*

यह अनुवाद पियूष आनंद, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है|